उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियाँ गुणवत्ता के संदर्भ में

पवन कुमार*

प्राथमिक शिक्षा किसी भी समाज एवं देश के विकास में मज़बूत आधार प्रदान करती है। यह वह बुनियाद होती है जिसके ऊपर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा रूपी विशाल इमारत का भविष्य निर्भर करता है, क्योंकि जब किसी विशाल इमारत के निर्माण की बात आती है तो सबसे पहले उसकी बुनियाद को मज़बूती प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। उस मज़बूती के आधार पर ही इमारत की ऊँचाई की कल्पना करना संभव होता है। वास्तव में यही बात प्राथमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा के संदर्भ में भी समान रूप से लागू होती है। किंतु यह बात शिक्षा व्यवस्था के नीति नियंताओं को या तो शायद समझ में नहीं आती या वह ऐसा करना ही नहीं चाहते हैं। जिनकी उदासीनता के कारण ही प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था बदहाली की स्थिति में पहुँच चुकी है। आज प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की जगह सिर्फ़ साक्षर ही बना पा रही है, जिससे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त अधिकांश बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त करना तो दूर, माध्यमिक शिक्षा भी पूर्ण नहीं कर पा रहे हैं। जहाँ एक ओर शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए नित नये दावे किये जा रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर हमारी शिक्षा व्यवस्था प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण आय के अच्छे स्रोत का माध्यम बनती जा रही है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में राजनैतिक हस्तक्षेप ने नियम-कानून एवं सिद्धांतों को ताक पर रखकर गुणवत्ता से समझौता कर रखा है। जिससे राज्य द्वारा गरीब, वंचित एवं पिछड़े वर्गों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के मौलिक अधिकार से वंचित किया जा रहा है, जो कि राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में बाधक है।

* *शोध छात्र,* शिक्षा विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर 246174 (उत्तराखंड)

Chapter 9.indd 78 09-08-2017 14:21:49

शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और देश के विकास की आधारशिला होती है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को न केवल समाज के लिए तैयार करना है, अपितु उसके अपने व्यक्तित्व का विकास भी करना होता है। इसके साथ ही शिक्षा का कार्य समाज तथा व्यक्ति के हितों में उपयुक्त तालमेल स्थापित करना भी है। गांधी जी ने शिक्षा की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया था कि शिक्षा का अर्थ सिर्फ़ अक्षर ज्ञान ही नहीं है, अपितु अच्छी शिक्षा वही है जो बालक अथवा व्यक्ति के मस्तिष्क, शरीर एवं आत्मा तीनों का भली-भाँति विकास करे। शिक्षा की इस महत्ता को समझकर ही स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षामंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने एक शैक्षिक सम्मेलन में कहा था, 'बुनियादी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है क्योंकि उसके बगैर वह बतौर नागरिक अपनी ज़िम्मेदारियों को बखूबी नहीं निभा सकता', परंतु वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के बुनियादी स्वरूप को देखकर तो नहीं लगता कि हम वास्तव में आज़ादी के 68 साल बीत जाने के पश्चात् भी अपने देश के प्रत्येक नागरिक को बुनियादी शिक्षा प्रदान करने के जन्म सिद्ध अधिकार को मुहैया करा पाने में समर्थ हो पाये हैं। अगर जहाँ भी शिक्षा की पहुँच हो पाई है वहाँ भी शिक्षा कम, निर्देशन ज़्यादा है, कक्षाओं में दिया जाना वाला यह निर्देशन बालकों में चारित्रिक, नैतिक एवं बौद्धिक विकास की जगह सूचनाओं का आदान-प्रदान ही कर पाता है। यह कार्य भी देश में संचालित निजी विद्यालयों की कक्षाओं तक ही सीमित है। सरकारी प्राथमिक विद्यालय तो इस कार्य को भी कर पाने में नाकाम सिद्ध होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में सरकारी विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करना गरीबों, दलितों, पिछड़ों एवं वंचितों के बच्चों के लिए एक सपना मात्र ही है।

शिक्षा में गुणवत्ता की संकल्पना का विचार

गुणवत्ता एक मनोवैज्ञानिक या नैतिक विशेषता है, जिसे प्राय: किसी वस्तु या परिघटना की सापेक्षिक स्थिति, प्रकृति, स्वरूप या गुणों के रूप में समझा जाता है।

प्राय: कार्यकुशलता, प्रभाविकता, मानकता, उत्कृष्टता एवं गुणवत्ता आदि सम्प्रत्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते रहे हैं। विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अवधारणा को बच्चों की उत्तरजीविता, संरक्षण, विकास एवं सहभागिता के अधिकारों की सुरक्षा के रूप में व्याख्या की जाती रही है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मुख्य ज़ोर अधिगम की उन स्थितियों एवं संदर्भों से है जो बच्चों में अर्थपूर्ण एवं प्रासंगिक ज्ञान, उपयोगी कुशलताओं एवं वांछित अभिवृत्तियों का विकास करने में सहायक होती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के बाद शिक्षायी गुणवत्ता की अवधारणात्मक समझ एवं व्याख्या में अमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिलते हैं। उस दौर के शिक्षा विमर्श की मुख्य चिंता वित्तीय प्रावधानों में बढ़ोत्तरी, संख्यात्मक विस्तार एवं फैलाव शिक्षायी मानकों का पुनर्गठन थे।

सन् 1986 की नवीन शिक्षा नीति की पुनरीक्षा करते हुए आचार्य राममूर्ति समिति ने शिक्षायी गुणवत्ता के लिए तात्विक सुधारों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। उसके अनुसार शिक्षायी गुणवत्ता

के लिए शिक्षक की भूमिका, समुदाय तथा बालक का परिवेश अनिवार्यत: घटक हैं, जिन्हें शिक्षायी प्रक्रियाओं एवं कार्यक्रमों में शामिल किये बिना गुणवत्ता को नहीं पाया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा

स्वतंत्रता के पश्चात् राज्य ने शिक्षा के क्षेत्र में लगातार निवेश जारी रखकर जो अप्रत्याशित वृद्धि की है वह बहुत ही सराहनीय है, जिससे राज्य के पिछड़े एवं दूर-दराज़ क्षेत्रों में सामान्य शिक्षा से ही सही, पिछड़ेपन एवं निरक्षरता से काफ़ी हद तक मुक्ति मिली है। एक निष्कर्ष के आधार पर यह बात सामने आयी है कि राज्य ने 'सभी के लिए शिक्षा' के लक्ष्य का क्रियान्वयन करने में कुछ राज्यों की श्रेणी में स्थान प्राप्त किया है। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि राज्य की शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति धीरे ही सही किंतु लगातार जारी है।

राज्य में जहाँ 1981 में साक्षरता दर 28 प्रतिशत थी, जो 1991 में 42 प्रतिशत हो गयी, वहीं वयस्क (15–35) साक्षरता दर 1991 में 38 प्रतिशत थी जो 1998 में बढ़कर 49 प्रतिशत तक पहुँच गयी। एक अन्य सर्वे के मुताबिक 1991 में जहाँ पुरुष साक्षरता दर 56 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 25 प्रतिशत थी वहीं आठ वर्ष के अंतराल के बाद 1999 में पुरुष साक्षरता दर 73 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 43 प्रतिशत तक ही बढ़ सकी (एन.एफ.एच.एस.II)। यह आँकड़े एक ओर प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था में प्रगति का आंकलन प्रस्तुत करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर राज्य की शिक्षा व्यवस्था की जटिल समस्या के साथ ही सामाजिक जड़ता को भी इंगित करते हैं।

अगर 2001 की जनगणना के आँकड़ों पर दृष्टिपात किया जाए तो पता चलता है कि राज्य में उस समय पुरुष साक्षरता दर 68.82 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 42.22 प्रतिशत थी। जबकि कुल साक्षरता दर का स्तर मात्र 56.27 प्रतिशत था, जो कि राष्ट्रीय साक्षरता दर से काफ़ी कम है। अगर 2011 की जनगणना की बात करें तो पुरुष साक्षरता दर 77.28 प्रतिशत, महिला साक्षरता दर 57.18 तथा कुल साक्षरता दर 67.68 तक ही पहुँच सकी है। बेहद चिंता की बात यह कि हम आज़ादी के 68 साल बीत जाने के पश्चात् भी राज्य को साक्षरता दर के आँकड़ों में देश में उच्चता की श्रेणी में पहुँचाने की बात तो दूर राष्ट्रीय साक्षरता दर के आँकड़ों तक भी नहीं पहुँचा सके। हालाँकि विगत वर्षों में प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था में मात्रात्मक रूप से उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। जिसका आकलन U-DISE- 2014–15 की रिपोर्ट में किया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार राज्य में वर्तमान समय में सबसे ज़्यादा विद्यालय (2,43,014) संचालित हैं, जिनमें 1,69,857 विद्यालय ऐसे हैं जो या तो सरकार द्वारा पूर्णतया पोषित हैं या अनुदानित हैं। इसी रिपोर्ट के मुताबिक इन विद्यालयों में 10,09,333 शिक्षक कार्यरत हैं। नामांकन की बात की जाए तो राज्य में संचालित विद्यालयों में 2,58,06,929 विद्यार्थी नामांकित हैं। इसके विपरीत रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य में 22,223 ऐसे विद्यालय भी हैं जो मात्र एक शैक्षिक के भरोसे संचालित हैं तथा राज्य में छात्र-अध्यापक अनुपात भी सबसे ज़्यादा (39) है। वहीं, आठवें 'ऑल इंडिया

स्कूल एजुकेशन सर्वे' के मुताबिक राज्य में कुल 3,69,611 पूर्णकालिक शैक्षिक तथा 1,88,952 अंशकालिक/पैराशैक्षिक नियुक्त हैं। उत्तर प्रदेश की प्राथमिक शिक्षा से संबंधित उपरोक्त आँकड़ों की विशालता को देखकर शायद ही किसी साधारण व्यक्ति को आश्चर्य हो किंतु वास्तविकता यह है कि देश की सबसे बड़ी जनसंख्या वाले इस महत्वपूर्ण राज्य में प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था के जो हालात हैं शायद ही देश के किसी दूसरे राज्य में होंगे। जिसके लिए राज्य सरकारों के साथ-साथ केंद्र सरकार भी समान रूप से ज़िम्मेदार है, क्योंकि शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ एवं दोषमुक्त बनाने के लिए राज्य की ही नहीं केंद्र की भी ज़िम्मेदारी बनती है।

शिक्षा में गुणवत्ता की चुनौतियाँ

सन् 1995 से पहले तक राज्य में लगभग 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के पास अपने बच्चों को बुनियादी शिक्षा प्रदान कराने के लिए सरकारी प्राथमिक विद्यालय ही एक मात्र विकल्प हुआ करते थे। उस समय के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में भौतिक संसाधनों का वर्तमान समय की तुलना में नितांत अभाव होता था, फिर भी वर्तमान समय की तुलना में उस वक्त प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक माहौल काफ़ी बेहतर हुआ करता था। जबकि उस समय के शिक्षकों को वर्तमान की तुलना बहुत कम वेतन मिला करता था। भौतिक संसाधनों के अभाव, वेतन व भत्ते कम होने तथा समय पर वेतन न मिलने की अनिश्चितता के भय के बावजूद भी उस समय के प्राथमिक विद्यालयों में जो पढ़ने-पढ़ाने का माहौल था। वह आज भौतिक एवं मानवीय संसाधनों के पर्याप्त मात्रा में होने तथा भारी-भरकम वेतनमान नियत समय पर मिलने के पश्चात् भी सरकारी विद्यालयों में पढ़ाई-लिखाई के अलावा बाकी सब कुछ हो रहा है, जिसके लिए सरकारों के साथ-साथ शिक्षा व्यवस्था में लगा प्रशासनिक अमला भी पूर्ण रूप से ज़िम्मेदार है। शिक्षा व्यवस्था को पटरी से उतारने के लिए सरकारों का खेल सन् 1990 के बाद से शुरू हुआ। जब राज्य में बड़े पैमाने पर अध्यापकों के सेवानिवृत्त होने का सिलसिला प्रारंभ हुआ और यह लगातार लगभग सन् 2000 तक चलता रहा। राज्य में जिसकी भी सरकार आयी वह शिक्षा को नजरन्दाज कर अपनी सियासी गोटियाँ खेलती रहीं, वहीं दूसरी तरफ़ शिक्षकों के बड़े पैमाने पर पद रिक्त होते गये। नतीजतन राज्य में स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि अधिकांश विद्यालय एकल शैक्षिक वाले या शैक्षिक विहीन हो गये। जहाँ एक ओर राज्य के विद्यालयों में 1990 के आसपास औसतन 4–5 अध्यापक कार्यरत थे, वहीं दूसरी तरफ़ एकल शैक्षिक या शैक्षिक विहीन विद्यालयों का होना, शिक्षा व्यवस्था का बदहाल स्थिति में पहुँचना स्वाभाविक ही था। राज्य की शिक्षा व्यवस्था जब पूरी तरह से ध्वस्त होने के कगार पर पहुँच चुकी थी, तब जनसाधारण ने सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उसके पश्चात् सरकार ने इन प्राथमिक विद्यालयों को बदहाली से उबारने के उपाय में योग्य प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति करने के स्थान पर अप्रशिक्षित व्यक्तियों को शिक्षा मित्रों के रूप में अस्थायी वैकल्पिक व्यवस्था के तहत नियुक्तियों

की ज़िम्मेदारी मुख्यत: ग्राम प्रधानों एवं ग्राम शिक्षा समितियों को दे दी गयीं। ग्राम प्रधानों के लिए यह एक सुनहरा अवसर था जिसका उन्होंने अपना वोट बैंक बनाने के साथ-साथ अपने सगे-संबंधियों को नियुक्त करने में अपने अधिकारों का भरपूर दुरुपयोग किया। जिसमें ग्राम प्रधानों द्वारा योग्यता के मानकों से समझौता कर यहाँ तक कि कुछ व्यक्तियों को फ़र्जी प्रमाण-पत्रों के आधार पर चयन प्रक्रिया में शामिल कर लिया। इस चयन प्रक्रिया में धनबल एवं बुद्धिबल के साथ-साथ बाहुबल का भी भरपूर उपयोग किया गया, इस बात से शायद ही कोई अनजान हो। वर्तमान प्राथमिक शिक्षा के भविष्य की पटकथा तो इस वैकल्पिक व्यवस्था के लागू होने के बाद से ही लिखी जा चुकी थी। जिससे प्राथमिक शिक्षा का भविष्य भी उसी समय निश्चित हो गया था। जहाँ एक ओर राज्य के प्राथमिक विद्यालय गरीबों, पिछड़ों एवं वंचितों के बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक मात्र विकल्प थे, वहीं दूसरी ओर सरकार ने बेरोज़गारों को रोज़गार प्रदान करने तथा ग्राम प्रधानों को अपनी सियासत का अड्डा बनाने का इन्हें केंद्र बना दिया। उसी परिणाम का फल है कि राज्य के ये प्राथमिक विद्यालय गरीबों, पिछड़ों एवं वंचितों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कराने के बजाय वैकल्पिक रोज़गार पाने वालों को नियमित रोज़गार दिलाने में निश्चित ही वरदान साबित होते जा रहे हैं। स्थिति यह है कि पिछले कई वर्षों से शिक्षा विभाग, सरकार एवं अदालतों के विपरीत फ़ैसलों के कारण योग्य प्रशिक्षित बेरोज़गारों के आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक शोषण का कारण भी बना हुआ है।

शिक्षा का मंदिर कहे जाने वाले इन विद्यालयों की स्थिति आज इसलिए भी बदतर है, क्योंकि इससे संबंधित शिक्षा विभाग आज भ्रष्टाचार के मामलों में कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। इन विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की योग्यता के मुद्दे को भी छोड़ दिया जाए तो दूसरी बहुत ही आश्चर्यचकित करने वाली बात यह है कि शिक्षा विभाग से संबंधित विभिन्न कार्यालयों में आज छोटे से लेकर बड़े जायज़ व नाजायज़ कार्य धन एवं राजनैतिक पहुँच पर ही निर्भर हैं। नियुक्ति, स्थानांतरण, वेतन निकासी, विभिन्न भत्ते, जितना चाहो उतना अवकाश (ऑन रिकॉर्ड, ऑफ़ रिकॉर्ड) इत्यादि जैसी सुविधाएँ व्यक्ति की राजनैतिक पहुँच तथा धन की मात्रा पर निर्भर करती हैं। जब किसी विभाग में संबंधित अधिकारियों एवं कर्मचारियों के पास सुविधाओं के ऐसे विकल्प मौजूद हों फिर वह क्यों मेहनत करके अपनी ऊर्जा को अकारण ही नष्ट करना चाहेगा, और वह क्यों अधिकारियों से भयभीत होकर अपने कार्य को ज़िम्मेदारी के साथ करेगा। ऐसी स्थिति में हम इन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों से शिक्षा, वह भी गुणवत्तापूर्ण होने की कैसे उम्मीद कर सकते हैं, क्योंकि गुणवत्ता के लिए किसी भी व्यवस्था में शामिल व्यक्तियों के अंदर अपने कार्य के प्रति समर्पण, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, जवाबदेही एवं ज़िम्मेदारी का होना नितांत आवश्यक होता है। ऐसा होने पर ही किसी व्यवस्था द्वारा संचालित होने वाली सामाजिक उत्थान व राष्ट्रीय विकास की योजना ज़मीनी स्तर पर मूर्त रूप ले सकती है, क्योंकि किसी भी व्यवस्था अथवा प्रणाली में

खामियाँ ऊपर से शुरू होती हैं और वह नीचे पहुँच कर अपनी जड़ें मज़बूत कर लेती हैं, जिससे उस तंत्र अथवा प्रणाली में अव्यवस्था का माहौल पनपने लगता है और यह अव्यवस्था ही भ्रष्टाचार का कारण बनती है। ऐसी स्थिति में गुणवत्तापूर्ण कार्य की बात तो दूर, सामान्य कार्यप्रणाली भी शिथिल पड़ने लगती है। कमोबेश यही स्थिति हमारे राज्य की प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था की है। पिछले कई वर्षों से शिक्षा विभाग, सरकार एवं अदालतों के विपरीत फ़ैसलों के कारण बेरोज़गारों के आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक शोषण का कारण भी बना हुआ है।

शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव —

शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए निम्नलिखित व्यवस्थागत सुधार कारगर साबित हो सकते हैं —

- शिक्षा व्यवस्था को राजनैतिक दलों द्वारा वोट बैंक मात्र के आधार के रूप में, दुरुपयोग से मुक्ति दिलाने के मकसद से देश में स्वतंत्र संस्था के रूप में 'राष्ट्रीय शिक्षा आयोग' का गठन किया जाना चाहिए।
- इस आयोग का गठन संसद द्वारा संवैधानिक संस्था का दर्जा देकर इसे पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करानी चाहिए।
- शिक्षा आयोग के प्रमुख के चयन में चुनाव आयोग, भारतीय महालेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, उच्चतम न्यायालय जैसे सरीखे संस्थाओं के प्रमुखों के समान ही नियुक्त प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए।
- शिक्षा आयोग के प्रमुख के अलावा अन्य सदस्यों का चयन, प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के अनुपात में, उस राज्य से सदस्यों की संख्या निर्धारित कर प्रत्येक राज्य से केवल संभ्रांत शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, समाज शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, साहित्यकारों, कलाकारों इत्यादि में से एक निश्चित नियुक्ति प्रक्रिया के तहत किया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम निर्माण में विषय-वस्तु का चयन, राजनैतिक दलों व सरकार की विचारधारा से मुक्त होकर देश की संस्कृति, सभ्यता, मानवीय व सामाजिक मूल्यों, व्यक्तित्व निर्माण इत्यादि का अन्य विषय-वस्तु के साथ-साथ निश्चित ही समावेश होना चाहिए। ये सभी पाठ्यक्रम में कम से कम बारहवीं कक्षा तक किसी न किसी विषय के रूप में शामिल किये जाने चाहिए।
- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की तर्ज़ पर ही राज्यों में भी राज्य शिक्षा आयोग का गठन किया जाना चाहिए। जिसके प्रमुख व अन्य सदस्यों का चयन राज्य लोक सेवा आयोग की तर्ज़ पर किया जाना चाहिए।
- देश में संचालित सभी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की योग्यता का एक समान मानदंड होना चाहिए। साथ ही शिक्षकों की नियुक्ति के लिए होने वाली पात्रता परीक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, द्वारा ही 'राष्ट्रीय शैक्षिक पात्रता परीक्षा' के नाम से करानी चाहिए।
- राष्ट्रीय शैक्षिक पात्रता परीक्षा में कुल 150 प्रश्नों में से 120 प्रश्नों को सभी के लिए समान

रखने के पश्चात् बचे हुए 30 प्रश्नों को राज्य विशेष से संबंधित विषय-वस्तु को अधिभार देकर, सभी राज्यों में से किसी एक राज्य का विकल्प चुनने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। अगर कोई व्यक्ति किसी भी राज्य विशेष का विकल्प न देकर परीक्षा देना चाहता है, तो उसके लिए सभी 150 प्रश्न 'केंद्रीय शैक्षिक पात्रता परीक्षा' के समान ही होने चाहिए।

- राज्य शिक्षा आयोग का कार्य शिक्षा व्यवस्था में नियमन एवं नियंत्रण के साथ-साथ शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया को रिक्तियों के सापेक्ष प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से राष्ट्रीय शैक्षिक पात्रता परीक्षा के प्राप्तांकों को आधार बनाकर या अन्य किसी बेहतर प्रक्रिया के तहत निष्पक्ष एवं पारदर्शी तरीके से कराने की ज़िम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।
- शिक्षा विभाग को रोज़गार प्रदाता विभाग के टैग से मुक्ति दिलाने तथा शिक्षा माफ़ियाओं एवं नकल माफ़ियों के वर्चस्व को कम करने तथा शिक्षा व्यवस्था में गुणवत्ता बढ़ाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा आयोग तथा राज्य शिक्षा आयोग द्वारा शैक्षिक मैरिट की जगह एक निश्चित योग्यता के मानक निर्धारित कर पूर्व व मुख्य परीक्षा का आयोजन कराकर ही शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
- शिक्षकों का मूल्यांकन समय-समय पर नियमित रूप से विद्यार्थियों की उपलब्धि के आधार पर तथा विद्यार्थियों द्वारा प्रत्येक शैक्षिक का उसकी अनुपस्थिति में किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों का प्रत्येक पाँच साल में लिखित मूल्यांकन किया जाना चाहिए तथा खराब निष्पत्ति होने पर आर्थिक दंड के प्रावधान के साथ-साथ प्रोन्नति पर भी रोक लगनी चाहिए, साथ ही उन्हें अपनी निष्पत्ति को बढ़ाने के लिए एक निश्चित अवधि तक ही समय देना चाहिए, ऐसा न कर पाने पर उनके विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए, जिससे कि शिक्षकों को पढ़ाने की बजाय राजनैतिक तथा व्यक्तिगत लाभ के कार्यों में अधिक व्यस्त रहने से रोका जा सके।

देश को वास्तव में अगर सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन से मुक्ति दिलाकर विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में लाकर खड़ा करना है तो, यह भी सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षा व्यवस्था में लगी इन संस्थाओं को सरकारों तथा राजनैतिक दलों के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्ति दिलायी जाए, जिससे कि वह राजनैतिक फायदे मात्र के लिए इस विभाग का दुरुपयोग न कर सके, क्योंकि पिछले कुछ वर्षों से जिस तरह से शिक्षा महकमा को राजनैतिक व्यवस्था द्वारा अपने फ़ायदे के लिए प्रयोग किया जाने लगा है, यह समाज एवं देश की प्रगति के लिए बहुत ही घातक है। इस प्रकार के गलत प्रचलन को रोकने के लिए समाज के शिक्षित एवं बुद्धिजीवी वर्ग को आगे आकर आवाज़ उठाने की नितांत आवश्यकता है। अगर यह सब ऐसे ही चलता रहा तो हमारी शिक्षा व्यवस्था राजनीति के मकड़जाल में फ़ँसी हुई ऐसे ही लड़खड़ाती रहेगी और हमारे समाज का गरीब, शोषित, वंचित एवं पिछड़ा वर्ग शिक्षा के अभाव में राजनैतिक दलों के लिए वोट बैंक के रूप में कठपुतली ही बना रहेगा।

ग्रंथ सूची

अग्रवाल, जे. सी. 2014. *उदयमान भारतीय समाज में अध्यापक*. पृ. 10. अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा.

अवस्थी, रीता एवं उमा शंकर पाण्डे. 2008. प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिकता में अपव्यय एवं अवरोधन. *परिप्रेक्ष्य*. अप्रैल, 2008. न्यूपा, नयी दिल्ली.

एजूकेशन इन उत्तर प्रदेश. विकीपीडिया.

एनसीईआरटी. *ऑल इण्डिया स्कूल एजुकेशन सर्वे*, 2014–15. एनसीईआरटी, नयी दिल्ली.

कुमार, विनोद. प्राथमिक शिक्षा तब और अब — एक समग्र यात्रा कक्षा कक्षीय शिक्षक के नज़रिये से. http://www.primarykamaster.com/ 1-08-2016 को देखा गया.

न्यूपा, डिस्ट्रिक्ट रिपोर्ट कार्डस. 2014–15. *ऐलीमेंटरी एजुकेशन इन इण्डिया — व्हेयर डू वी स्टैण्ड*. न्यूपा, नयी दिल्ली.

नागर, सुनीता कुमारी और अन्विति सिंह. 2010. 21वीं सदी में भारतीय शिक्षा व्यवस्था कुछ समस्याएँ कुछ समाधान. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, अप्रैल, वर्ष 30. अंक 4, पृ. 14–22. एनसीईआरटी, नयी दिल्ली.

भारत सरकार *सेन्सस ऑफ़ इण्डिया*. 2011. नयी दिल्ली.

शर्मा, संजय. 2010. शिक्षा, गुणवत्ता एवं विचारधारा. *परिप्रेक्ष्य*. दिसंबर, 2010. न्यूपा, नयी दिल्ली.